A Pratibha Spandan's Journal

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 12, Issue 01, January-June, 2025
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2025

# प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पर्यावरण शिक्षा की समकालीन प्रासंगिकता

**डॉ. अनुपम सिंह[1], अंशुमान दुबे[2]**

सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

Read the Article Online

OPEN ACCESS

## सारांश

*पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास वर्तमान समय की महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। भारतीय संस्कृति और धर्मशास्त्रों में प्रकृति के प्रति गहरे सम्मान का भाव प्रकट किया गया है। वेदों, पुराणों, उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानस जैसे ग्रंथों में पर्यावरणीय संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग और संतुलन की शिक्षा दी गई है। इस शोध पत्र का उद्देश्य इन प्राचीन ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय सिद्धांतों का अध्ययन कर यह समझना है कि वे आधुनिक पर्यावरण शिक्षा और सतत विकास में कैसे सहायक हो सकते हैं। इस शोध पत्र के अंतर्गत भारतीय धर्मशास्त्रों, महाकाव्यों और पुराणों में वर्णित पर्यावरणीय दृष्टिकोण का गुणात्मक अध्ययन किया गया। विभिन्न वैदिक श्लोकों, पुराण कथाओं, स्मृतियों और महाकाव्यों के संदर्भों का विश्लेषण कर उनके व्यावहारिक और वैज्ञानिक पहलुओं को समझने का प्रयास किया गया। अध्ययन में पाया गया कि वेदों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पूजनीय मानते हुए उनके संरक्षण की शिक्षा दी गई है। पुराणों और महाकाव्यों में वृक्षारोपण, जल संरक्षण और पर्यावरणीय संतुलन की नीतियों का उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भगवद्गीता और जैन दर्शन में प्रकृति और मानव के बीच संतुलन बनाए रखने तथा अहिंसा और करुणा के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा दी गई है। वर्तमान समय में बढ़ते औद्योगीकरण और प्रदूषण को देखते हुए प्राचीन भारतीय पर्यावरणीय सिद्धांतों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है। यदि आधुनिक समाज इन शिक्षाओं को अपनाए, तो सतत विकास और पर्यावरणीय संतुलन को प्राप्त किया जा सकता है। अतः, पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भारतीय परंपराओं और शास्त्रों से प्रेरणा लेकर ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।*

***मुख्य शब्द:*** *पर्यावरण शिक्षा, पारंपरिक ज्ञान, सतत विकास, प्राकृतिक सामंजस्य, वैदिक ज्ञान।*

## प्रस्तावना

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद २|१७)

व्याकरण आचार्यों के मतानुसार संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ के अनुसार "परि" एवम् "आङ" उपसर्ग पूर्वक 'वृ' धातु से "ल्युट" प्रत्यय होने पर पर्यावरण शब्द निष्पन्न होता है। पर्यावरण का शब्दकोशीय अर्थ अड़ोस-पड़ोस, चारों ओर की स्थिति,आस- पास की घाटनाएँ, नीति- व्यव्हारादि, किसी विषय या व्यक्ति की स्थिति,परिस्थिति, वातावरण माना गया है। मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार-'एन्वायरनमेन्ट (परिवेश) भौतिक, रासायनिक, जैव तथा सामाजिक तत्त्वों की वह समग्रता है, जिसमें व्यक्ति सन्निहित है और जिसका जीवन पर विशाल प्रभाव पड़ता है। भारतीय धर्मशास्त्रों तथा सन्त-महात्माओंने जगदाधार, परम उदार विश्वम्भर परमेश्वर के औदार्य की अनुभूति करते हुए उन्हें 'कृपासिन्धु भगवान्' कहा है। 'भगवान्' शब्द की संरचना के सम्बन्ध में विचार करने पर देखने में आता है कि यह पद भ, ग, व, अ तथा न इन पाँच वर्णों से बना है। प्रकृति परायण श्रद्धापूरितों ने 'भ' का अभिप्राय भूमि से, 'ग' का गगन से, 'व' का वायु से, 'अ' का अग्नि से तथा 'न' का नीर से माना है। ये सब वर्ण जिस परमसत्ता के वाचक पद के लिये अभिव्यंजक हैं, वह परमसत्ता भगवान् है। भगवान् के वांगमय विग्रह श्रीरामचरितमानस की अर्धाली **'ब्यापक बिस्वरूप भगवाना'** को व्याख्यायित करते हुए मानसमर्मज्ञ पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में कहते हैं कि 'भगवाना'-का अन्तिम वर्ण 'आ' सकल ब्रह्माण्ड को आवृत्तकर जीवों को पोषण तथा रक्षण प्रदान करने वाली शक्ति का परिचायक है। इस दृष्टिकोण से पर्यावरण को भगवान्का पर्याय कहा जाना सर्वप्रकारेण उचित है।

सनातन विचारधारा के प्रवर्तक हमारे पूर्वज (ऋषि, मुनि) अद्वितीय वैज्ञानिक, शोधकर्ता, मानव-कल्याणके प्रति समर्पित, दूरदृष्टि तथा गहरी सोच रखने वाले पथ प्रदर्शक थे। वे अपने तपोमय स्वाध्याय के माध्यम से ज्ञात कर चुके थे कि प्रकृति द्वारा स्थापित विधान के अन्तर्गत कुछ भी निरर्थक नहीं है। सूर्य, हवा, जल, मिट्टी, वनस्पति, जीव-जन्तु आदि सभी एक-दूसरे के हित में सदा सहयोगी बने रहते हैं। ये मानवों के हितैषी हैं, अतः उन्हें चाहिये कि वे इन पर्यावरणीय पदार्थों का यथोचित उपयोग करें और सदा ही इनके संरक्षण में निरत रहें। ऋषियों ने मानव-मस्तिष्क को सही दिशा

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 12, Issue 01, January-June, 2025
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2025

प्रदान करने के लिये वेद, पुराण, उपनिषद् आदि उत्कृष्ट ग्रन्थों की उद्भावना की, ताकि मानवसमुदाय सामाजिक सद्भाव बनाये रखे और प्रकृति में अंगीभूत 'जियो और जीने दो' के विधान का पालन करते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकास करते हुए आत्मोद्धार करे।

हम प्रागैतिहासिक काल से निकल कर ऐसे युग में पहुँच चुके हैं जिसमें विज्ञान व तकनीकी के प्रगति ने मानव को ऐसी शक्तियां प्रदान कर दी है जिनसे ऐसा भ्रम होता है की मनुष्यने प्रकृति को अपने वश में कर लिया है। आज का सुविधा भोगी मनुष्य भौतिकवादी होता जा रहा है और सुख भोगने की यही लालसा मानव के पर्यावरण को किस स्तर तक ले जाएगी यह कल्पनातीत हो रहा है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास से मनुष्य ने प्राकृतिक संपदा के दोहन हेतु अनेक आविष्कार किए हैं इनसे हमारा जीवन तो सुविधापूर्ण हो गया है पर जीवनदायिनी पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बिगड़ने लगा है इस असंतुलन का प्राणी जगत पर अत्यंत दुष्प्रभाव हुआ है पंचतत्वों के बढ़ते दोहन एवं प्रदूषण के कारण मानव एवं अन्य प्राणियों के स्वास्थ्य पर संकट मंडराता जा रहा है।

ऐसे में प्राचीन भारतीय ग्रंथों (वेद, पुराण, उपनिषद, श्रीमद्भगवादगीता, श्रीरामचरितमानस) में संचित पर्यावरणीय ज्ञान, सदियों पुरानी पारिस्थितकीय तंत्र की जानकारी, प्रकृति के साथ सामंजस्य और प्राकृतिक संसाधनों के सम्मान करने के सिद्धांतों की उपादेयता आज के इस युग में प्रभावी हो सकती है।

**शोध की परिधि**

यह शोध प्राचीन भारतीय ग्रंथों—जैसे वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत और भगवद्गीता—में अंतर्निहित पर्यावरणीय दृष्टिकोणों और उनके संरक्षण-संबंधी सिद्धांतों का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन उन धार्मिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक मूल्यों की पहचान करता है जो पर्यावरण संतुलन और सतत विकास को प्रोत्साहित करते हैं। शोध की परिधि में विशेष रूप से भारतीय परंपरा में प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण, पंचमहाभूतों का महत्व, वृक्ष, जल, वायु और जीव-जंतुओं के संरक्षण से जुड़े नैतिक बोध और व्यवहारिक पक्षों को समाहित किया गया है।

**शोध के उद्देश्य**

- प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निहित पर्यावरणीय ज्ञान की पहचान एवं विश्लेषण करना।
- यह स्पष्ट करना कि भारतीय परंपरा में प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति किस प्रकार की धार्मिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना विद्यमान रही है।
- पर्यावरण संरक्षण से संबंधित प्राचीन सिद्धांतों की आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता को स्थापित करना।

**अनुसंधान पद्धति**

यह शोध पत्र एक गुणात्मक एवं वर्णनात्मक अध्ययन है। अध्ययन के लिए प्राथमिक स्रोतों के रूप में प्राचीन भारतीय ग्रंथों (वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, भगवद्गीता आदि) का पाठ आधारित विश्लेषण किया गया है। साथ ही, द्वितीयक स्रोतों जैसे विद्वानों की टीकाओं, शोधपत्रों और प्रासंगिक साहित्य का सहारा लिया गया है। तुलनात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से प्राचीन पर्यावरणीय ज्ञान और आधुनिक पर्यावरणीय सिद्धांतों के बीच संबंधों की पहचान की गई है। इस शोध पत्र में ग्रंथों में निहित प्रतीकों, रूपकों और प्रसंगों का पर्यावरणीय दृष्टिकोण से गहन अध्ययन किया गया है, ताकि उनके व्यवहारिक और सैद्धांतिक महत्व को आधुनिक संदर्भ में स्थापित किया जा सके।

## i) प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पर्यावरणीय दृष्टिकोण

प्रकृति के समस्त सौंदर्य से परिपूर्ण यह भारतीय वसुंधरा सदा से ही पर्यावरण संरक्षण का संदेश देती रही है, जिसकी झलक हमारी संस्कृति, सभ्यता रीती रिवाज व मान्यताओं में देखने को मिलती है। पेड़ पौधों व वृक्षों की पूजा से, पशु पक्षियों की पूजा और पंचतत्वों की पूजा का प्रावधान हमारा प्रकृति और पर्यावरण रक्षा की चेतना का द्योतक है।

**अ) वेदों में पर्यावरण शिक्षा:** वैदिक युग में मानव जीवन के हितार्थ पर्यावरण की रक्षा, प्रकृति से निकटता, तथा घर में अग्निहोत्री की परमावश्यक व्यवस्था थी। वेदों में प्रकृति के विभिन्न रूपों को देवता माना गया है प्रकृति के इन रूपों की पूजा एवं सत्कार का विधान है। पृथ्वी, जल( नदियों के रूप में), वायु, आकाश और तेज (सूर्य, चंद्र, नक्षत्र मण्डल तथा उषा आदि रूप), वनस्पति, पर्वत, और षड् ऋतुओं आदि प्रायः प्रकृति के सभी रूपों को देवता स्वीकरा गया तथा इन सभी को पूजा जाता था। ऐसी मान्यता की स्थिति में प्रकृति के इन रूपों को हानि पहुँचाना, मलिन करना अथवा नष्ट करना संभव ही नहीं था, जिसकी हम पूजा करते हो अथवा जिसे हम देवता मानते हो, उसे मलिन करना अथवा हानि

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 12, Issue 01, January-June, 2025
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2025

पहुँचाना कदापि संभव नहीं होता। वेद पुराण आदि शास्त्रों ने पीपल, वट, तुलसी आदि कई पेड़ पौधों को पूजनीय बताया है और उनके काटने का निषेध किया है। वट, पीपल आदि देव वृक्ष है वट वृक्ष के मूल भाग में ब्रह्मा, मध्य जनार्दन विष्णु तथा अग्रभाग में देवाधिदेव शिव प्रतिष्ठित रहते हैं। देवी सावित्री भी वट वृक्ष में स्थित रहती है।

वटमूले स्थितो ब्रह्मा वटमध्ये जनार्दनः। वटाग्रे तु शिवो देवः सावित्री वटसंश्रिता॥

जो व्यक्ति पीपल,नीम तथा बरगद का एक, चिंचिड़ी (इमली) के दस, कपित्थ, बिल्व और आँवले के तीन और आम के पाँच पेड़ लगाता है, वह कभी नरक में नहीं जाता-

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिञ्चिणीकम्।
कपित्थबिल्वामलकत्रयं च पञ्चानवापी नरकं न पश्येत्॥

(उत्सर्गमयूख, भविष्यपुराण का वचन)

अथर्ववेद में कहा गया है कि जल एक विश्वसनीय औषध है। जल रोगनाशक है।जल विश्वभेषज (दवा) है-

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात्॥

(अथर्ववेद ३।७।५)

**ब) पुराण और महाकाव्यों में पर्यावरण शिक्षा:** पुराणों में अपराधों के लिये दण्डनीति की सम्यक् व्यवस्था विहित है। मत्स्यपुराण के अध्याय २२७ में शासकों तथा नृपों के लिये सम्पूर्ण दण्डनीति का निरूपण किया गया है। इसी दण्डनीति-निरूपण में हत्या, बलात्कार आदि जघन्य अपराधों के साथ पर्यावरण-संरक्षण-क्रम में वृक्षों एवं फले-फूले वृक्ष-लता-गुल्मादि के नष्ट किये जाने सम्बन्धी दण्ड की व्यवस्था की गयी है। यथा-

फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्॥ गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्।

(मत्स्यपुराण २२७। ३५१/२)

अर्थात् फल देने वाले तरु, पुष्पित लताएँ, गुल्मों, वल्लियों तथा जिनमें फूल लगे हों और बादमें फल लगने वाले हों, उन्हें काटने पर सौ ऋचाओं का जप करके प्रायश्चित्त करे। सामान्यतः, ऐसे लोगों को राजाओं द्वारा दण्डित किये जाने की व्यवस्था विहित थी।

भारतीय संस्कृति में वृक्षारोपण पर विशेष बल दिया गया है। यही नहीं, वृक्षारोपण को सबसे अधिक पुण्यदायी बताया गया है-

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः॥

(मत्स्यपुराण)

अर्थात् एक बावली बनवाने से दस कूपों के समान, एक तालाब बनवाने से दस बावलियों के निर्माण का पुण्य प्राप्त होता है। एक पुत्रोत्पत्ति से दस तालाबों के बनवाने का पुण्य प्राप्त होता है और एक वृक्ष लगाने से दस पुत्र उत्पन्न करने के समान पुण्य प्राप्त होता है।

पर्यावरण-संरक्षण तथा पर्यावरण-प्रदूषण-निवारणके विषय में संस्कृत के मूर्धन्य महाकवि कालिदास, भवभूति, भास एवं वाल्मीकि आदि भी कम जागरूक, आशंकित तथा चिन्तित नहीं थे। कालिदास ने तो विशेष रूप से प्रदूषण को इंगित करते हुए **रघुवंश (५।८)-** में समागत ऋषि कौत्स और रघु-संवादमें आशंका व्यक्त करते हुए कहा था-

निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको
येभ्यो निवापाञ्जलयः पितॄणाम्।
तान्युञ्छषष्ठांकितसैकतानि
शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित्॥

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 12, Issue 01, January-June, 2025
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2025

अर्थात् जिन-जिन स्थानोंपर आप लोग जलमें स्नान करते हैं, जिसमें अपने पितरों का तर्पण करते हैं या जल देते हैं, जिन के तटों पर शिलोञ्छजीवी लोग अपने द्वारा चुने गये उञ्छ (खेत कटने के बाद पड़ा रह जानेवाला अन्न) का छठा भाग 'यह धर्मतः राजा का भाग है' ऐसा समझकर रखते हैं, ऐसे आपके तीर्थों के जल प्रदूषित तो नहीं हैं। परंतु विडम्बना है कि आज तो तीर्थों के ही जल प्रदूषित हैं।

**विष्णुपुराण (५।१०।३२)**-में इसी अर्थ में कहा गया है कि खेतों के अन्त में सीमा है, सीमा के अन्त में वन है और वनों के अन्त में पर्वत हैं, वे पर्वत ही हमारी परमगति हैं –

कृष्यान्ता प्रथिता सीमा सीमान्तं च पुनर्वनम्। वनान्ता गिरयस्सर्वे ते चास्माकं परा गतिः ॥

इसमें पर्वतों की सुरक्षा का बड़ा ही ध्यान रखने योग्य मूलमन्त्र छिपा हुआ है; क्योंकि पर्वतों ने कृषि सहित वृष्टि, वायु और वन के विकास में अपना योगदान किया है और यह 'व'-त्रयी ही हमारे सांस्कृतिक स्वरूप में पर्यावरण का मूलाधार है, यही मान्यता वृक्षायुर्वेद की है। पर्वत की मेखलाएँ ही किसी प्रदेश में प्राणियों के आवास-प्रवास की सीमाएँ तय करती हैं। बार्हस्पत्यसूत्र और पुराणों में पर्वतों को इसी अर्थ में कुल और कुलाकुलरूप में जाना गया है, जो मानव को प्रत्येक त्रासदी से मुक्ति देते हैं। प्रलयकाल में मनु के बचने के लिये भी पर्वतों ने ही सहारा दिया।

**स) रामराज्य और पर्यावरण नीति:** पाप से पापी की हानि ही नहीं होती, वातावरण भी दूषित होता है, जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रामराज्य में पाप का अस्तित्व नहीं है, इसलिये दुःख का लेशमात्र भी नहीं है। पर्यावरण की शुद्धि तथा उसके प्रबन्धन के लिये रामराज्य में सभी आवश्यक व्यवस्थाएँ की जाती हैं। वृक्षारोपण, बाग-बगीचे, फूल-फलवाले पौधे तथा सुगन्धित वाटिका लगाने में सब लोग रुचि लेते हैं। नगर के भीतर तथा बाहर का दृश्य मनोहारी है-

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं॥ लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥ (रा०च०मा० ७।२८।१)

बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं। सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं ॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं। आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं ॥

(रा०च०मा० ७।२९ छंद)

अर्थात् सभी लोगों ने विविध प्रकार के फूलों की वाटिकाएँ अनेक प्रकारके यत्न करके बनाकर लगायी हैं। बहुत-सी जाति की सुहावनी ललित बेलें सदा वसन्त की भाँति फूला करती हैं। नगर की शोभा का जहाँ वर्णन नहीं किया जा सकता, वहाँ बाहर चारों ओर का दृश्य अत्यन्त रमणीय है। रामराज्य में बावलियाँ और कूप जल से भरे रहते हैं, जलस्तर भी काफी ऊपर है। तालाब एवं कुओं की सीढ़ियाँ भी सुन्दर एवं सुविधाजनक हैं। जल निर्मल है। अवधपुरी में सूर्यकुण्ड, विद्याकुण्ड, सीताकुण्ड, हनुमान्कुण्ड, वसिष्ठकुण्ड, चक्रतीर्थ आदि तालाब हैं, जो प्रदूषण से पूर्णतः मुक्त हैं। नगर के बाहर १२ वन हैं- अशोक, संतानक, मंदार, पारिजात, चन्दन, चम्पक, प्रमोद, आम्र, पनस, कदम्ब एवं ताल आदि।

**द) श्रीमद्भगवादगीता और पर्यावरण:** श्रीमद्भागवत कथा के महानायक स्वयं श्रीकृष्ण सर्वोत्कृष्ट पर्यावरणविद् हैं। वे अपनी व्रज-लीलाओं कि माध्यम से समष्टिगत पंचमहाभूत, पंचतन्मात्राओं, महत्तत्त्व और त्रिविध अहंकार का शोधन करते हैं। पृथ्वी-तत्त्व के शोधन के लिये वे मृद्भक्षण की लीला करते हैं। जल-तत्त्व के शोधन हेतु कालिय-ह्रद का निर्मलीकरण करते हैं, अग्नि-तत्त्व का शोधन करने के लिये दो बार दावानलपान की तथा आकाश-तत्त्व के शोधनके लिये व्योमासुर के वध की लीला करते हैं। गोवर्धनोद्धरण समष्टिप्रकृतिपूजा है, तो उनका गोचारण, इन्द्रिय-समष्टि की पुष्टि है। गोरस-नवनीतादि-हरण-लीला करके गोपियों को सुख देने की क्रियाएँ बहुविध चित्तवृत्तियों के उपरमण का उच्चतम विज्ञान है। ब्रह्म-मोह की लीला, महत्तत्त्व अथवा समष्टि बुद्धि के उदात्तीकरण की यौगिक प्रक्रिया है। वे वृक्षों और वनस्पतियों के महत्त्व का निरूपण करते हुए श्री कृष्ण अपने गोप-सखाओं से कहते हैं कि ये वृक्ष महाभाग्यशाली, परोपकारी, सहिष्णु और अमित दानी हैं, इनका जीवन धन्य है-

निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः। आतपत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥
हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन। विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ॥
पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान्। वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः ॥
पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते ॥

श्रीमद्भागवत (१०।२२।३०-३२, ३४)

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 12, Issue 01, January-June, 2025
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2025

वस्तुतः अपने आत्म-चैतन्य की ही सर्वत्र परिव्याप्ति का अनुभवकर समस्त जड़-चेतनात्मक प्रकृति में आत्मीयता का आधान ही भारतीय 'पर्यावरण-चेतना' है।

### ii) प्राचीन पर्यावरण शिक्षा के सिद्धांत:

**अ) प्रकृति और मानव के बीच संतुलन:** यज्ञ वैदिक धर्म का मेरुदण्ड है। यज्ञ को यदि बाह्य रूप से देखें तो यह केवल किसी देवता विशेष के लिये द्रव्य का अग्नि में प्रक्षेप है, परंतु वस्तुतः ऐसा नहीं है। यह एक विलक्षण रहस्य से संवलित है। जिस कर्म से शुद्धि-देहशुद्धि, इन्द्रियशुद्धि, अहंकार-शुद्धि और चित्तशुद्धि होती है; जिस कर्म का फल स्वार्थ नहीं परमार्थ होता है, जिस कर्म से पुराना आवरण क्षीण होकर नया आवरण बनता है, भूशुद्धि होती है, पर्यावरणको संरक्षण मिलता है और जिससे वर्षा का आगमन होता है, जो मार्ग संसारी जीव को कल्याण के मार्ग पर प्रशस्त करता है और अन्त में महाज्ञान कराता है-वही यज्ञ है। गीता के अनुसार निष्काम भाव से किया गया योगस्थ कर्म ही यज्ञ है। उ यज्ञीय प्रक्रिया द्वारा पर्यावरण-प्रदूषण का परिशोधन जितना सहज सम्भव है, उतना और कोई उपाय न तो इतना कारगर है और न सरल है; क्योंकि पर्यावरण-परिशोधन न विश्वकल्याणार्थ है, उसी के भीतर व्यक्ति का स्वकल्याण भी निहित है।

नागपुरस्थित गो-विज्ञान-अनुसन्धान केन्द्र द्वारा प्रस्तुत 'गाय के सद्गुणों 'में बताया गया है कि 'हवन-क्रिया के दौरान १० ग्राम गाय का घी, एक टन ऑक्सीजन का प्रजनन करता है। चावल तथा घी का मिश्रण अग्नि के प्रभाव में इथोलीन ऑक्साइड, प्रोपीलीन ऑक्साइड तथा फार्मेल्डिहाइड का उत्सर्जन करता है। एथिलीन ऑक्साइड एवं फार्मेल्डिहाइड की उपस्थिति जीवाणुओं से प्रतिरक्षा (इम्यूनिटी) प्रदान करती है, जिसका उपयोग शल्यशाला (ऑपरेशन थिएटर) में किया जाता है। इसलिये गाय का घी दहन के माध्यम से पर्यावरण-शुद्धता प्रदान करता है तथा वर्षा प्रेरक (इन्ड्यूस) की भूमिका निभाने में सक्षम है।

**ब) प्रकृति संरक्षण के व्यावहारिक पहलू:** वास्तव में पेड़ मानव को ईश्वर की ऐसी देन है कि जिसके गुणों की कोई सीमा नहीं है पेड़ों की उपयोगिता के कारण ही देश के विभिन्न अंचलों में पेड़ों को लेकर अलग-अलग परम्पराएँ प्रचलित हैं। कहीं मनोकामना पूर्ति के लिये पेड़ों की मनौती मानी जाती है, तो कहीं पेड़ों को देवताओं का स्वरूप माना जाता है। भारतके कुछ क्षेत्रों में परम्परा है कि जब वर-वधू गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं, तो वे एक पेड़ लगाते हैं। मान्यता है कि यह पेड़ जितना हरा-भरा रहता है, - दाम्पत्य-जीवन उतना ही सुखी-सम्पन्न रहता है। वट वृक्ष को सुहाग प्रदान करने वाला एवं उसकी रक्षा करने वाला माना जाता है। इसलिये अनेक अंचलों में स्त्रियाँ ज्येष्ठमास की अमावस्या को उपवास रखकर वट – वृक्ष की पूजा करती हैं। कुछ क्षेत्रों में पुत्र-प्राप्ति के लिये – पीपल की पूजा की जाती है। पुराणों के अनुसार पीपल के – पेड़ की जड़ में ब्रह्मा, तने में विष्णु और टहनियों में शिव का – वास है। पीपल में सबसे अधिक ऑक्सीजन छोड़ने की – शक्ति होती है। इसलिये पर्यावरण को शुद्ध करने में पीपल के गुणों के कारण इसको काटना या जलाना – शास्त्रोचित नहीं है। बहुत से आदिवासियों में यह प्रथा है-कि विवाह के समय वधू महुए के पेड़ पर सिन्दूर लगाकर उससे सुहागिन होने का वर माँगती है और वर आम के पेड़ की पूजा करके अपने वैवाहिक जीवन की सफलता की कामना करता है। कुछ प्रान्तों में 'हरछठ' के दिन स्त्रियाँ झरबेरी और काँस के पेड़ों की पूजा करके अपने पुत्रों के दीर्घ जीवन की प्रार्थना करती हैं। दशहरे पर शमी वृक्ष की पूजा का विधान आज भी अनेक भागोंमें प्रचलित है। शिवरात्रि के अवसर पर बेलपत्रों से शिव की पूजा फलदायी मानी जाती है। तुलसी को शुद्धि की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। तुलसी अनेक बीमारियों में रामबाण औषधि सिद्ध होती है। चन्दन, नीम, बबूल आदिके पेड़ भी मानव जीवन के लिये अत्यधिक कल्याणकारी हैं।

वृक्ष जीवमात्र के उपकारी, सेवाधर्म के प्रेरक अधिष्ठान, दैवीय शक्ति से सम्पन्न और सर्वपूज्य हैं। भारतीय संस्कृति की सर्वप्रथम पुस्तक ऋग्वेद है, जिसमें किसी भी मंगल-कृत्य के समय वृक्षों के कोमल पत्तों का स्मरण किया गया है, वह ऋचा निम्नलिखित है-

काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषः परि ॥) (कृ०यजु० ४।२।९।३)

**स) जल स्रोतों की पवित्रता व सम्मान:** घर के पास जीवाणुरहित, रोगनाशक जल का स्रोत हो, अग्नि, घृत, दुग्ध और अग्नि के साथ शुद्ध जल के सेवन से मृत्युसे भी रक्षा होती है-

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः । गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना॥ अथर्ववेद (३।१२।९)

जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है, यह भोजन के पचाने में तीव्र रस है। प्राण, कान्ति, बल और पौरुष देने वाला और अमरत्व की ओर ले जानेवाला मूल तत्त्व है। यह जीवन का आधार है, जिससे देखने, सुनने, बोलने और चलने की शक्ति आती है।।

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 12, Issue 01, January-June, 2025
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2025

धर्मशास्त्रों तथा पुराणों में इष्टापूर्त धर्म की बड़ी महिमा आयी है। इष्ट कहते हैं निःस्वार्थभाव से कुआँ, बावली, तालाब, देवालय, धर्मशाला, मन्दिर, पौसला आदि बनवाना, उनका जीर्णोद्धार कराना, छायादार एवं फलदार वृक्ष लगाना आदि यज्ञ यागादि के संपादन को और पूर्त करते हैं। **यमस्मृति (६८)** में बताया गया है कि इष्टकर्मों से स्वर्ग तथा पूर्तकर्मों से मोक्ष प्राप्त होताहै-

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षं समश्नुते ॥

द) **वायु की शुद्धि और रक्षा:** जल की तरह वायु की शुद्धता और उसकी सुरक्षा भी हमारे जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। वायु ही प्राण है, और प्राण के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जल के बिना कुछ दिनों तक जीवित रहा जा सकता है, लेकिन वायु के बिना कुछ क्षण भी बिताना असंभव है। ऋग्वेद में वायु को 'अमृत का भंडार' कहा गया है। ऋग्वैदिक मंत्रों में शुद्ध वायु को औषधि, स्वास्थ्यवर्धक, सभी रोगों को दूर करने वाला और दीर्घायु प्रदान करने वाला बताया गया है। इसलिए, इसका संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। यह तभी संभव है जब हम स्वच्छता को अपने कार्यों में सर्वोच्च प्राथमिकता दें। इसी तरह, यजुर्वेद के इस मंत्र—

"द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः" (यजुर्वेद ५।४३)

में भी वायु की शुद्धता बनाए रखने और आकाश को किसी भी तरह की अनुचित गतिविधियों से प्रदूषित न करने का संदेश दिया गया है।

व) **प्रकृति के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व:** भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है, और इसे धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं से जोड़ा गया है। विभिन्न देवी-देवताओं के वाहनों के रूप में विभिन्न जीवों को प्रतिष्ठित कर, उनके संरक्षण का संदेश दिया गया है। जैसे—घोड़ा सूर्य का, हंस ब्रह्मा और सरस्वती का, गरुड़ विष्णु का, बैल शिव का, मूषक गणेश का, कुत्ता भैरव का, भैंसा यम का, मकर गंगा का, गर्दभ शीतला का, कौआ शनि का, नर भेड़ अग्नि का, सिंह दुर्गा का तथा मोर कार्तिकेय का वाहन माना गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपराओं में पर्यावरण से जुड़े सभी तत्वों की महत्ता स्वीकार की गई है।

वर्तमान समय में नदी-तालाबों पर अतिक्रमण, भूमि और समुद्र का अत्यधिक दोहन, पहाड़ों और चट्टानों का अंधाधुंध उत्खनन, पशु-पक्षियों की हिंसा और बढ़ते प्रदूषण के कारण ओजोन परत को क्षति पहुंच रही है। इन सभी समस्याओं का समाधान केवल धर्म, नैतिकता, संतोष और मानवता के आचरण में निहित है। जैन दर्शन भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण संदेश देता है। इसमें 'आत्मा यथा स्वस्य तथा परस्य विश्वैकसंवादविधिर्नरस्य' के माध्यम से सभी जीवों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा दी गई है। इसी तरह, 'यथा स्वयं वांछति तत्परेभ्यः कुर्वञ्जनः' के सिद्धांत द्वारा षट्कायिक जीवों की रक्षा एवं अहिंसा का संदेश दिया गया है।

जैन वाङ्मय में बाह्य पर्यावरण के साथ-साथ अंतः पर्यावरण का भी गहन विश्लेषण किया गया है। आध्यात्मिक चिंतन मानव को कर्म की ओर प्रवृत्त करता है, इसलिए भौतिक पर्यावरण की शुद्धि के लिए आत्मिक शुद्धि आवश्यक है। अंतःशुद्धि और बाह्य शुद्धि का घनिष्ठ संबंध है, और इसके लिए अहिंसक व्यवहार एवं अनेकांतवाद के विचारों को अपनाना परम आवश्यक है। जैन सिद्धांत और आचार, देह शुद्धि, मनःशुद्धि और पर्यावरण शुद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जिससे संतुलित और नैतिक रूप से समृद्ध जीवन संभव हो सकता है।

### iii) आधुनिक संदर्भ में प्राचीन ग्रंथों की प्रासंगिकता:

हमारी भारतीय संस्कृति व उसके सिद्धांतों का इतिहास हजारों वर्ष प्राचीन है। गहन तपोवन में अपने ज्ञान,विज्ञान व सांस्कृतिक वैभव का अर्जन करने के कारण इसे आरण्यक भी कहते हैं, यह अपनी विविधता वह प्राकृतिक संतुलन के प्रति सम्मान के लिए जानी जाती है। मानव जीवन के चार आश्रम में से तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास वन या प्रकृति से ही जुड़े हैं इसके अलावा सभी प्राकृतिक तत्व व उनकी शक्तियां हमारे धर्म संस्कृति में पूजनीय है जिन का उदाहरण हमारे वेदों उपनिषदों पुराणो और महाकाव्यों में दृष्टिगोचर होता है।

**यजुर्वेद (५/४३) में 'पृथिव्या सम्भव'** कहकर, अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त (१२।१) के सभी ६३ मंत्रों तथा अन्य कई स्थानों पर यह प्रतिपादित किया गया है कि पृथ्वी को माता और पर्जन्य (मेघ) को पिता के रूप में मान्यता दी गई है।

सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः। (१२।१।१०)

अर्थात, यह पृथ्वी माता हमें अपने पुत्रों के रूप में पालते हुए पोषण प्रदान करे।

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ (१२।१।१२)

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 12, Issue 01, January-June, 2025
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2025

अर्थात, पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। पर्जन्य (मेघ) हमारे पिता हैं, वे हमें पोषण प्रदान करें।

तुलसी,पीपल, नीम, सतावर, दुद्धी, ब्राह्मी, आँवला आदि अनेक पेड़ पौधों का प्रयोग रोग उपचार में घर घर में किया जाता है, प्रत्येक मांगलिक कार्यक्रम में खेत, नदी, तालाब वृक्ष आदि की पूजा का प्रावधान तथा वायु को दूषित न करने और तीर्थ जल को कभी गंदा न करने का प्रावधान हमारा पर्यावरण के प्रति लगाव वह उसके संरक्षण की संवेदनशीलता को दर्शाता है।

शाण्डिल्य स्मृति में निर्देश दिया गया है कि तीर्थ के जल को शारीरिक अंगों से क्षुब्ध न करें, न ही पैरों से जल को उछालें। तैरने या अन्य जल क्रीड़ाएँ न करें, तथा कुल्ले (गण्डूष) का जल तीर्थजल में न डालें। एक-दूसरे पर जल फेंकने का खेल न करें और न ही शरीर का कोई मल जल में प्रवाहित करें।

अम्बु न क्षोभयेदङ्गैः पादेनोत्सादयेन्न च ॥
नाचरेत् प्लवनक्रीडां न गण्डूषं जले क्षिपेत्।
अन्योऽन्यं न क्षिपेत् तोयं न देहमलमुत्सृजेत्॥ (शाण्डिल्यस्मृति २|२२-२३)

अर्थात, जल को व्यर्थ न हिलाएँ, उसमें खेल-कूद न करें और उसे किसी भी प्रकार से दूषित न करें।

न कुत्सयेदम्बु तीर्थमन्यत् तत्र न कीर्तयेत्। (शाण्डिल्यस्मृति २|२४)

अर्थात, तीर्थ के जल का अनादर न करें और वहाँ अनुचित बातें न करें।

सतत विकास की अवधारणा आधुनिक समय की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन गई है, जिसका मूल उद्देश्य पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था के बीच संतुलन बनाए रखना है। यदि इस संदर्भ में प्राचीन भारतीय चिंतन का अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि हमारी परंपराओं और दर्शन में प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने की व्यापक दृष्टि निहित है। पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश – की अवधारणा भारतीय विचारधारा का आधार रही है, जिसमें प्रत्येक तत्व को सृष्टि का महत्वपूर्ण घटक माना गया है। सतत विकास के लिए आवश्यक है कि इन प्राकृतिक तत्वों का संतुलन बनाए रखा जाए, जिससे पर्यावरणीय असंतुलन और संसाधनों के क्षरण की समस्या को नियंत्रित किया जा सके।भारतीय कृषि प्रणाली में प्राकृतिक और जैविक पद्धतियों का उपयोग किया जाता था, जिसमें ऋतुचक्र के अनुरूप कृषि कार्य किए जाते थे। यह प्रणाली पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखते हुए दीर्घकालिक पोषण सुरक्षा प्रदान करती थी। किंतु वर्तमान समय में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अति प्रयोग के कारण मिट्टी की उर्वरता नष्ट हो रही है और जलस्रोत प्रदूषित हो रहे हैं। अतः सतत विकास की दृष्टि से जैविक कृषि और पारंपरिक पद्धतियों को पुनः अपनाने की आवश्यकता है। इसी प्रकार, भारतीय दर्शन में समस्त जीव-जगत के प्रति अहिंसा और करुणा का भाव रखा गया है। वृक्षों, नदियों, पर्वतों और वन्य जीवों को पूजनीय मानने की परंपरा इसी सोच का प्रतिफल थी। यदि इसी दृष्टिकोण को आधुनिक समाज में लागू किया जाए, तो पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखना संभव होगा। प्राचीन भारतीय जीवनशैली में संतोष और संयम को अत्यधिक महत्व दिया गया है। सीमित उपभोग और आवश्यकतानुसार संसाधनों के प्रयोग की प्रवृत्ति व्यक्ति को न केवल आंतरिक संतुष्टि प्रदान करती है, बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन को भी रोकती है। किंतु औद्योगीकरण और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति के कारण संसाधनों का अत्यधिक शोषण किया जा रहा है, जिससे सतत विकास के लक्ष्य बाधित हो रहे हैं। यदि प्राचीन भारतीय सिद्धांतों के आधार पर संतुलित उपभोग की अवधारणा को अपनाया जाए, तो पर्यावरणीय संकट को कम किया जा सकता है।भारतीय परंपरा में यज्ञों का आयोजन न केवल धार्मिक उद्देश्यों के लिए, बल्कि पर्यावरण शुद्धि के लिए भी किया जाता था। यज्ञों में उपयोग की जाने वाली औषधीय वनस्पतियाँ वायुमंडल को शुद्ध करने में सहायक होती हैं, जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, भारतीय समाज में सामाजिक सहभागिता और सहकारिता की परंपरा रही है, जो संसाधनों के न्यायसंगत वितरण और सामूहिक हितों की रक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। सतत विकास के लिए आवश्यक है कि इस प्रकार की सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाए और पर्यावरण-नीतियों को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए।योग और प्राकृतिक जीवनशैली भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहे हैं, जो न केवल व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक हैं। योग के माध्यम से आत्म-संयम, संतुलित आहार और प्राकृतिक जीवनशैली को अपनाया जा सकता है, जिससे आधुनिक समाज में संतुलित और सतत विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है। संपूर्ण दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय अवधारणाएँ सतत विकास के मूल सिद्धांतों के अनुरूप हैं। यदि आधुनिक नीतियों में इन सिद्धांतों को समाहित किया जाए, तो

CONFLUENCE OF KNOWLEDGE
(A Multidisciplinary International Peer-Reviewed/Refereed Journal)
ISSN 2320–5237 | Volume 12, Issue 01, January-June, 2025
http://cok.pratibha-spandan.org | © The Author(s) 2025

पर्यावरणीय संकट को नियंत्रित किया जा सकता है और संसाधनों का दीर्घकालिक संरक्षण संभव हो सकता है। अतः सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारतीय दार्शनिक और पारंपरिक दृष्टिकोण को आधुनिक संदर्भों में पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है।

## निष्कर्ष

यह अध्ययन प्राचीन भारतीय ग्रंथों में निहित पर्यावरण शिक्षा के गहन सिद्धांतों का विश्लेषण करता है। इसमें वेद, पुराण, महाकाव्य, रामायण तथा भगवद्गीता जैसे स्रोतों से प्राप्त ज्ञान को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन ग्रंथों में प्रकृति के पंचमहाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—के प्रति जो आदर एवं संरक्षण की भावना दर्शाई गई है, वह न केवल प्राकृतिक संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग का संदेश देती है, बल्कि मानव जीवन के नैतिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आयामों को भी उजागर करती है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वृक्षारोपण, जल स्रोतों की पवित्रता एवं प्राकृतिक सामंजस्य के सिद्धांत भारतीय सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग रहे हैं, जो आज के पर्यावरणीय संकट के समाधान में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।आधुनिक औद्योगीकरण और तकनीकी प्रगति के कारण पर्यावरणीय संतुलन में उत्पन्न असमानता एवं संकट के बीच, प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली हमें यह उपदेश देती है कि प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना ही जीवन का मूल आधार है। यदि इन परंपरागत सिद्धांतों को आधुनिक शिक्षा, नीति निर्माण एवं सामाजिक व्यवहार में उचित स्थान प्रदान किया जाए, तो पर्यावरणीय स्थिरता एवं सतत विकास की दिशा में सार्थक प्रयास किए जा सकते हैं। अंततः यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि प्राचीन और आधुनिक ज्ञान का समन्वय न केवल पर्यावरणीय संकटों के निवारण में सहायक होगा, बल्कि एक नैतिक, सहजीवी एवं समृद्ध समाज की स्थापना की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। सम्पूर्ण ब्रह्मांड—चाहे वह आकाश की अनंतता हो, अथवा अंतरिक्ष की गहराई, पृथ्वी की स्थिरता, जल का प्रवाह, औषधियों की जीवंतता या वनस्पतियों की हरियाली—हर एक तत्व में शांति का अद्वितीय रूप विद्यमान है। इसी एकरूप शांति में निहित है सभी देवताओं की उपस्थिति और परमात्मा का स्वरूप, जिससे सम्पूर्ण जगत शांति से ओत-प्रोत हो जाता है। इसका अर्थ यह भी है कि सच्चा आनंद उसी शांति में निहित है, और मेरी प्रार्थना है कि यह शांति मेरे भीतर भी पूर्णतः स्थापित हो जाए।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

(यजुर्वेद ३६|१७)

## संदर्भ

वेदों में पर्यावरणीय शिक्षा. (2020). AIJRA, 5(4), 20.1-20.6. https://Www.ijcms2015.co

Environmental Education in the Vedas. (2020). AIJRA, 5(4), 20.1–20.6. https://www.ijcms2015.co

वेदों में पर्यावरण संरक्षण. (2016). International Journal of Sanskrit Research, 3(1), 28–30. https://Www.anantaajournal.com

Environmental Conservation in the Vedas. (2016). International Journal of Sanskrit Research, 3(1), 28–30. https://www.anantaajournal.com

वेदों में पर्यावरण. (2019). IJRSML, 7(12), 30–32. https://Www.raijmr.com

Environment in the Vedas. (2019). IJRSML, 7(12), 30–32. https://www.raijmr.com

वर्तमान समय में पर्यावरण शिक्षा की प्रासंगिकता. (2024). IJARPS, 3(11), 56–63. https://www.ijarps.org

Relevance of Environmental Education in the Present Times. (2024). IJARPS, 3(11), 56–63. https://www.ijarps.org

भारतीय संस्कृति का पर्यावरण में समावेशन: आधुनिक युग की आवश्यकता. (2024). IJARPS, 3(12), 16–21. https://www.ijarps.org

Integration of Indian Culture in Environment: A Need of the Modern Era. (2024). IJARPS, 3(12), 16–21. https://www.ijarps.org

Environmental consciousness as reflected in Indian literature since Vedic era. (2023). IJFMR, 5(5), 1–9. https://www.ijfmr.com